जाना जा सकता है, क्योंकि जीव और परमेश्वर का भेद अंश तथा अंशी के भेद के समान है—जीव परमेश्वर का भिन्न-अंश है। वेदान्तसूत्र तथा श्रीमद्भागवत में भी परतत्त्व को वस्तुमात्र का मूल स्वीकार किया गया है। इनका अनुभव परा और अपरा प्रकृति के क्रम से होता है। सातवें अध्याय में कहा है कि जीव परा प्रकृति के भिन्न-अंश हैं। शक्तिमान् एवं शक्ति में अभेद होते हुए भी शक्तिमान् परतत्त्व है, जबकि शक्ति अर्थात् प्रकृति उसकी वशवर्तिनी है। अतएव सेवक और शिष्य के जैसे जीवात्मा नित्य परमेश्वर श्रीकृष्ण के आधीन रहते हैं। अज्ञानावस्था में इस शुद्ध ज्ञान को ग्रहण नहीं किया जा सकता। अतः अज्ञान का नाश कर जीवमात्र को सदा के लिए प्रबुद्ध कर देने के लिए भगवान् श्रीकृष्णचन्द्र भगवद्गीता रूपी शिक्षामृत का परिवर्षण कर रहे हैं।

1.2

**अविनाशि तु तद्विद्धि येन सर्वमिदं ततम्।**
**विनाशमव्ययस्यास्य न कश्चित्कर्तुमर्हति।।१७।।**

**अविनाशी**=नाशरहित; **तु**=तो; **तत्**=उसे; **विद्धि**=जान; **येन**=जिसके द्वारा; **सर्वम्**=सम्पूर्ण देह; **इदम्**=यह; **ततम्**=परिपूर्ण है; **विनाशम्**=नाश; **अव्ययस्य**=अविनाशी का; **अस्य**=इसका; **न कश्चित्**=कोई भी नहीं; **कर्तुम्**=करने में; **अर्हति**=समर्थ है।

## अनुवाद

अविनाशी तो उसको जान, जो सम्पूर्ण शरीर में व्याप्त है। इस अव्यय आत्मा का विनाश करने में कोई भी समर्थ नहीं है।।१७।।

## तात्पर्य

इस श्लोक में सम्पूर्ण देह में व्याप्त आत्मतत्त्व के यथार्थ स्वरूप का अधिक स्पष्ट वर्णन है। यह सत्य सभी के अनुभव में आता है कि सम्पूर्ण देह में एक ही चैतन्य तत्त्व व्याप्त है। सम्पूर्ण देह के अथवा किसी एक शरीरांग के सुख-दुःख का बोध जीवमात्र को होता रहता है। परन्तु देह में चैतन्य की यह व्याप्ति व्यष्टि-शरीर तक सीमित है। किसी एक प्राणी के देहगत सुख-दुःख का बोध अन्य को नहीं होता। इससे सिद्ध होता है कि प्रत्येक देह में एक-एक आत्मा आबद्ध है, जिसका अनुभव व्यष्टि-चेतन रूप में हुआ करता है। इस आत्मा का माप केश के अग्रभाग के १०,००० वें भाग के बराबर कहा गया है। **श्वेताश्वतर उपनिषद्** में इस सत्य का प्रमाण है—

**बालाग्रशतभागस्य शतधा कल्पितस्य च।**
**भागो जीवः स विज्ञेयः स चानन्त्याय कल्पते।।**

"आत्मा का माप केश की नोक के सौवें भाग के शतांश के बराबर है।" (श्वे० ५.९) इसी भाँति, श्रीमद्भागवत में भी उल्लेख है: